बी.आर. शिनॉयः

सत्य की एकमात्र तलाश

महेश पी भट्ट

स्वर्गीय प्रोफेसर बी.आर. शिनॉय एक विश्व-विख्यात अर्थशास्त्री थे। नोबेल पुरस्कार विजेता मिल्टन फ्रायडमैन के शब्दों में, "प्रो. बी.आर. शिनॉय एक ऐसे महान व्यक्ति थे जिनके पास भारत में केंद्रीय आयोजना में व्याप्त त्रुटियों को पहचानने की समझ थी तथा उनमें जो बात और भी दुर्लभ थी, वह बिना किसी झिझक के अपने दृष्टिकोण को खुले तौर पर व्यक्त करने का साहस था। वस्तुतः कभी-कभार ही ऐसे व्यक्ति हमारे समाज में जन्म लेते हैं।"

मुझे उनके साथ गुजरात विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ सोशल साइंसेस के अर्थशास्त्र विभाग में बतौर उनके सहयोगी के रुप में जुड़ने का सौभाग्य हासिल हो सका। मैं उस उम्मीद के साथ उनके आर्थिक दृष्टिकोण और उनकी जीवनी के संक्षिप्त अंशों का स्मरण कर रहा हूं कि इससे प्रोफेसर शिनॉय के विचारों और उनके व्यक्तित्व की एक झलक देखने को मिल सकेगी।

लगभग ढाई दशकों तक, प्रोफेसर शिनॉय की भारतीय आर्थिक नीति और आयोजना पर होने वाले विचार-विमर्श पर अमिट छाप रही। व्यावसायिक और लोकप्रिय जर्नलों में उनके द्वारा बड़ी संख्या में किए गए लेखों के योगदान ने उन्हें विश्व स्तर पर एक अत्यंत शक्तिशाली समालोचक के रूप में विख्यात कर दिया था, जिनके विषय में प्रोफेसर बॉयर ने कहा था, "डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स की बनावटी सर्वसम्मति।"

वे प्रशिक्षण और साथ ही गहन रूप से उदारवादी परंपरा के अर्थशास्त्री थे, अतः उन्होंने स्वयं को स्वाभाविक तौर पर विकासशील आयोजना की "मुख्यधारा" में हमेशा असहमत ही पाया। उनके विचार हायकियन उदारवाद से अत्यधिक प्रभावित थे तथा अपने संपूर्ण जीवन में एक अर्थशास्त्री,

एक सामाजिक दार्शनिक और एक आलोचक के रूप में, वे सदैव ही एक उग्र एवं समझौता न करने वाले उदारवादी ही बने रहे। वे दूसरी पंचवर्षीय योजना में अपनाई गई विकास रणनीति के घोर विरोधी थे। उनके अनुसार, महत्वाकांक्षी निवेश योजनाओं संसाधन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए घाटे की अर्थव्यवस्था पर अपनी व्यापक निर्भरता के साथ वह रणनीति देश को मुद्रास्फीति तथा नियंत्रणों की व्यवस्था में स्थायी रूप से ले जाने के लिए प्रतिबद्ध थी। उनके विचार में, एक वास्तविक विकासोन्मुखी रणनीति के लिए वित्तीय एवं मूल्य संबंधी स्थायित्व को बनाए रखने की नीति के प्रति एक यथार्थवादी एवं दीर्घकालिक प्रतिबद्धता को उसका एक अनिवार्य अंग होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, अत्यंत उच्च पूंजी-उन्मुखी वस्तु उद्योगों का विकास करने पर बल देने वाली भारतीय योजना के परिणामस्वरूप कृषि और अन्य क्षेत्रों की ओर से संसाधनों का बड़े पैमाने पर पलायन कम लाभ देने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की ओर हो रहा है। वस्तुतः यह एक कम रोजगार सृजित करने वाली रणनीति है, जो उनके विचार से भारत जैसा गरीब देश वहन कर सकने में असमर्थ था।

एक अत्यधिक सामान्य स्तर पर, प्रोफेसर शिनॉय उस समय के अधिकांश विकास संबंधी अर्थशास्त्रियों की क्रियाविधिक (Methodological) भविष्यवाणियों से सहमत प्रतीत नहीं होते थे, जो यांत्रिक विकास मॉडलों के संदर्भ में विकासात्मक मुद्दों को तैयार कर रहे थे और उनका विश्लेषण करने में जुटे थे, और जिनमें मूल्य-सैद्धांतिक विषय वस्तु का स्पष्ट अभाव था। उन्होंने विकास की प्रक्रिया को सर्वाधिक जटिल प्रक्रिया माना और इस बात पर विश्वास किया कि इसे केवल मुक्त बाजारों और विकेंद्रीकृत विकल्पों के माहौल में व्यक्ति विशेषों के आर्थिक क्रिया-कलापों के मात्र एक सह-उत्पाद के रूप में ही हासिल किया जा सकता है। उनके विचार में, प्रशासनिक आदेशों के माध्यम से "बाजार अवधारित" प्राथमिकताओं को "योजनाबद्ध" प्राथमिकताओं से बदलने का प्रयास, चाहे वह कितना भी सुशासित क्यों न हो, सदैव ही मजबूती की समझ एवं

संज्ञान की दृष्टि से अत्यंत कमजोर होते हैं, और ऐसे प्रयासों के प्रति बाजार की प्रतिक्रिया की दिशा और इन प्रतिक्रियाओं के अंतिम आवंटनात्मक एवं वितरणात्मक प्रभाव भी क्षीण होते हैं। सामान्यतः ये प्रयास ऐसे परिणाम उत्पन्न करते हैं, जो उनकी प्रतिक्रियाओं से बिल्कुल उलट होते हैं। स्वाभाविक रूप से, प्रचलित दृष्टिकोण के साथ उनकी असहमति ऐसे मुद्दों से संबंधित होती थी, जिनकी प्रकृति आधारभूत होती थी और उनके प्रति उनका विरोध पूर्ण नहीं होता था।

वर्ष 1955 से पूर्व, उनकी रुचि सैद्धांतिक एवं अनुपयुक्त अर्थशास्त्र के बीच मोटे तौर पर बराबर ही विभाजित रही। उन्होंने अपना पहला पेपर *क्वार्टरली जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स* (1931) में प्रकाशित किया था, जिसका शीर्षक था, "एन इक्वेशन फॉर दि प्राइज़ लेवल ऑफ न्यू इन्वेस्टमेंट गुड्ज़"। यह पेपर *ट्रीटाइज़ ऑफ मनी* में "फंडामेंटल इक्वेशन" में नई निवेश वस्तुओं के मूल्य स्तर के कीन्स के सिद्धांत पर उनके द्वारा व्यक्त किए गए असंतोष के नतीजतन लिखा गया था। प्रोफेसर शिनॉय के विचार में कीन्स की चर्चा केवल यह दर्शाती थी कि किन परिस्थितियों में बैंकिंग प्रणाली को निवेश वस्तुओं के मूल्य-स्तर में शामिल होने से बचना चाहिए तथा इसमें और अधिक आधारभूत मुद्दों का समाधान नहीं किया गया था कि नई निवेश वस्तुओं के मूल्य-स्तर स्वयं ही किस प्रकार अवधारित होते हैं। *ट्रीटाइज़* की अभिव्यक्तियों और परिभाषा के ढांचे का अनुपालन करते हुए प्रोफेसर शिनॉय ने अतिरिक्त समीकरणों द्वारा आधारभूत समीकरणों की प्रणाली को संपूरित किया तथा यह दर्शाने का प्रयास किया कि किस प्रकार कोई प्रणाली नई निवेश वस्तुओं के मूल्य-स्तर के लिए एक अवधारित समाधान पैदा कर सकती है। इसके पश्चात्, उन्होंने *क्वार्टरली जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स* (1933) में एक और पेपर "इंटरडिपेंडेंस ऑफ प्राइम लेवल्स" प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने इस मुद्दे से संबंधित और अधिक महत्वपूर्ण परिणाम प्रस्तुत किए।

इन दोनों पेपर्स को संबद्ध क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान के रूप में लिया गया और वे अपने व्यवसाय की परिधि में एक उभरते हुए वित्तीय अर्थशास्त्री के रूप में स्थापित हो गए। वे संभवतः पहले भारतीय अर्थशास्त्री थे, जिनके सैद्धांतिक पेपर्स को विश्वस्तरीय जर्नल में प्रकाशित किया गया था।

परंतु वर्ष 1955 के बाद से बदलते हुए बौद्धिक परिवेश में उन्होंने भारतीय आर्थिक नीति तथा आयोजना पर ही ध्यान केंद्रित किया। भारतीय अर्थव्यवस्था नीति के क्षेत्र में उनके सहयोग को दृष्टिकोण की महत्वपूर्ण एकजुट बाजार सिद्धांतों की अद्भुत समझ तथा संसाधनों के आवंटन में मूल्य तंत्र की भूमिका की समझ के रूप में विशिष्ट माना जाता है। ये लेखक के सिद्धांतों के सृजनात्मक अनुप्रयोग की विशेषता तथा निर्णय, प्रासंगिकता और संदर्श की सच्ची भावना की ठोस गवाही देते हैं। इनसे भी ऊपर, ये एक ऐसे सामाजिक वैज्ञानिक की ओर इशारा करते हैं, जिसके मन में अपने शिष्यों के प्रति अगाध सम्मान था, जिसने निष्कर्षों को हासिल करने के लिए कोई समझौता नहीं किया तथा एक बार उन्हें निर्धारित कर लेने पर, उनका साहस के साथ अनुरक्षण किया। प्रोफेसर शिनॉय यदि कुछ थे, तो वे अगुवा लोगों में से थे। वे ऐसे अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने अल्पसंख्यक मत में भी अपनी सही बात पर कायम रहने का साहस दिखाया था। अपने विषय पर उनके द्वारा किए गए प्रत्येक महत्वपूर्ण योगदान की वजह से भारतीय अर्थशास्त्रियों के बीच दीर्घकालिक विवाद उठा और अनेक यादगार बहसें छिड़ीं। यहां यह दावा करना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि विकासात्मक विषयों के विश्लेषण में, बाजार के सिद्धांत के वास्तविक महत्व के प्रदर्शन में उनके योगदान बहुत ही लाभकारी रहे हैं तथा इस प्रकार उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं पर व्यावसायिक चर्चा के चरित्र एवं गुणवत्ता में परिवर्तन ला दिया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना की तैयारियों के समय भारत सरकार ने अर्थशास्त्रियों का एक पैनल तैयार किया और प्रोफेसर शिनॉय को इसका सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया। पैनल के

सदस्य के रूप में, उन्होंने घाटे की अर्थव्यवस्था के व्यापक कार्यक्रम के विरुद्ध अपनी सुविख्यात "असहमति की टिप्पणी" लिखी जिसे दूसरी योजना के सदस्यों द्वारा बहुमत में अपने ज्ञापन में प्रस्तावित किया गया था। उन्होंने अपनी असहमति की टिप्पणी में लिखी गई बातों को विस्तारित रूप से तथा अधिक विस्तार में अपने सर विलियम मेयेर्स व्याख्यान(1955-56) में उल्लिखित किया, जो उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय में दिया था। इन व्याख्यानों को बाद में मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा *प्रॉब्लम्स ऑफ इंडियन इकोनॉमिक डेवलपमेंट* नामक पुस्तक के रुप में प्रकाशित किया गया था।

भारतीय संदर्भ में, इस पुस्तक को नव-शास्त्रीय वित्तीय सिद्धांत की परंपरा में, विकास योजना के वित्तीय पहलुओं के विश्लेषण में पहले मुख्य योगदान के रूप में मान्यता मिली। इसमें राजकोषीय घाटे, मुद्रास्फीति और आर्थिक विकास के बीच संबंधों पर निर्णायक चर्चा की गई है। तकनीकी स्तर पर, यह भारतीय अर्थव्यवस्था में धनापूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों का उत्कृष्ट विश्वलेषण उपलब्ध कराती है, तथा धनापूर्ति और सरकार के बजटीय प्रचालनों के बीच संबंधों पर इसमें विशेष बल प्रदान किया गया है, और सुस्थापित सर्वसम्मति के विपरीत, यह दूसरी योजना की पर्याप्त समीक्षा करने तथा योजनाबद्ध व्यय की दर को वास्तविक स्वैच्छिक बचतों की उपलब्ध मात्रा के साथ संगत स्तर तक बनाए रखने की जोरदार वकालत करती है। प्रोफेसर शिनॉय ने अपने दो पेपर्स अर्थात "दि इंडियन इकोनॉमिक्स सेंस" और "प्रोफेसर गाडगिलः रीफ्रेज़िंग दि सेकंड प्लान" में इस विषय-वस्तु को आगे उल्लेखित किया, जिन्हें *इंडियन इकोनॉमिक जर्नल* (1958) के अप्रैल और जुलाई अंकों में प्रकाशित किया गया था।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के शुरू होते ही, मुद्रास्फीति दबावों का बढ़ना आरंभ हो गया। भुगतान समाशोधन की स्थिति उत्तरोत्तर रूप में नाजुक हो गई और सरकार को कड़े आयात एवं विनिमय नियंत्रण लगाने पड़े। वर्ष 1957 में, प्रोफेसर शिनॉय को भारतीय इकोनॉमिक एसोसिएशन के 40वें

वार्षिक सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया और अपने अध्यक्षयीय भाषण में उन्होंने वर्तमान भुगतान समाशोधन की स्थिति के समाधान के रूप में भारतीय रुपये को उदार बनाने की जोरदार वकालत की। उनके अध्यक्षयीय संबोधन पर अनेक अर्थशास्त्रियों के बीच विद्यमान भुगतान समाशोधन के संकट को दूर करने के लिए अवमूल्यन की प्रभाविता पर पर्याप्त चर्चा हुई और इस मुद्दे पर बाद में अनेक महत्वपूर्ण पेपर्स प्रकाशित हुए।

प्रो. शिनॉय द्वारा भुगतान समाशोधन संकट का विश्लेषण और अवमूल्यन की उनकी वकालत में मौलिकता का विशिष्ट रूप झलकता है, जबकि इस चर्चा में शामिल अनेक विशेषज्ञों ने अपने विश्लेषण को पारंपरिक लचीलेपन के दृष्टिकोण पर आधारित रखा, उन्होंने इस दृष्टिकोण को भारतीय संदर्भ में पूरी तरह अप्रासंगिक बताया। अनेक प्रभावशाली साक्ष्य प्रस्तुत करके उन्होंने दर्शाया कि भुगतान समाशोधन संकट का जन्म घरेलू मुद्रास्फीति के कारण हुआ था, तथा इसे विद्यमान आधिकारिक विनिमय दर पर व्यापार की गई वस्तुओं के राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मूल्यों के बीच निहित व्यापक अंतरों में पाया गया है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि अवमूल्यन आयात एवं निर्यात नियंत्रणों के संदर्भ में प्रभावी होगा तथा अवमूल्यन के प्रभावों के विश्लेषण में इस विशेष तथ्य को समुचित रूप से पहचानने की जरुरत है। उनके विचार में, समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए, भारतीय व्यापारियों का व्यापारिक वस्तुओं के अंतरराष्ट्रीय मूल्य पर बहुत ही कम प्रभाव है। उसके नतीजतन, भारत के लिए व्यापार के संदर्भ में अवमूल्यन कोई परिवर्तन अभिलक्षित नहीं करता है। भारतीय परिस्थितियों में अवमूल्यन के परिणामस्वरूप अनिवार्य रूप से निर्यात की जाने वाली मदों पर अप्रत्यक्ष कर और निर्यातकों के लिए सहायता समाप्त होती है। उन्होंने यह आशय व्यक्त किया कि इसमें निर्यातकों द्वारा प्राप्त किए गए रुपये के मूल्यों में वृद्धि शामिल होगी तथा अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बिक्री की घरेलू खपत से निर्यातित वस्तुओं का रूपांतरण किया जा सकेगा। उन्होंने इस संदर्भ में निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की

घरेलू आपूर्ति के लचीलेपन के महत्व को भी पहचाना। तथापि, उन्होंने आयातों के घरेलू मूल्यों पर अवमूल्यन के प्रभाव को शून्य मानाः विद्यमान रुपये की लागतों में अंतरों और आयातों की घरेलू बाजार कीमतों के कारण आयातकों द्वारा अर्जित किए गए असामान्य लाभों द्वारा पूरी तरह वहन किए गए प्रभावों के रूप में।

आने वाले अनेक वर्षों तक, मुद्रा और मूल्य स्थिरता के बारे में तथा व्यापार और विनिमय नियंत्रणों के स्थान पर स्वायत्त विनिमय दर समायोजनों पर निर्भरता पर उनके विचारों को सरकार द्वारा कोई महत्व नहीं दिया गया। इसके परिणामस्वरूप, इन वर्षों में उन्होंने इस दिशा में आगे और जांच की तथा स्वयं को भारत में नवीनीकृत विनिमय दर प्रणाली के कार्यकरण के विश्लेषण के प्रति समर्पित कर दिया। उन्होंने इस प्रणाली की सभी प्रमुख घोषणाओं पर अनेक पेपर लिखेः आयातों और निर्यातों के अति एवं अल्प बीजकों पर, आयात लाइसेंसों के व्यापार पर भारत से पूंजी के गुप्त निर्यातों पर, व्यापार की तस्करी के वित्त पोषण पर, तथा विदेशी सहायता का गलत आवंटन।(1)

स्वाभाविक रूप से, इन विषयों से संबंधित उनके योगदानों पर एक अत्यंत व्यापक प्रस्तुतिकरण करना यहां पर संभव नहीं है। तथापि, यहां यह उल्लेख किया जाता है कि उन दिनों वे संभवतः ऐसे एकमात्र भारतीय अर्थशास्त्री थे जो इन मुद्दों के अन्वेषण में अत्यंत अधिक तकनीकी शोध के प्रयास कर रहे थे। भारत में विनिमय एवं व्यापार नियंत्रणों के कार्यकरण के विभिन्न पहलुओं पर उनके अध्ययनों ने स्पष्ट रूप से प्रति-समतावादी तथा विकृत आवंटनीय प्रभावों को उजागर किया। इसके अलावा, उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं की अति पूंजीवादिता के रूप में भारत द्वारा प्राप्त विदेशी सहायता की बड़े पैमाने पर व्यर्थता तथा तस्करी से जुड़ा कारोबार के वित्त पोषण का उल्लेख किया। विदेशी सहायता पर उनके विचारों ने उन्हें देश के शासक वर्ग के मध्य अलोकप्रिय बना दिया। तथापि, वे एक स्पष्ट और ठोस तरीके से इस मुद्दे पर अपने विचारों

को व्यापक रूप से प्रकाशित करने से नहीं डरे। एक राष्ट्रीय विनिमय दर नीति को स्वीकार करने में सरकार के सैद्धांतिक विरोध को महसूस करते हुए, उन्होंने अनेक पेपर्स में आयात लाइसेंसों की बोली के लिए एक नीति बनाने का दबाव डाला। ऐसी कोई नीति प्रति-समतावादी आय अंतरणों और आवंटनीय विकृतियों को कम कर सकती थी जो सरकार की व्यापार एवं विनिमय नियंत्रणों की नीति के अनुपालन से व्यापक रूप से संग्रहित हो रही थीं।

भारतीय आयोजना एवं विनिमय दर प्रणाली के मौद्रिक पहलुओं के संबंध में उनके योगदानों के अलावा, प्रोफेसर शिनॉय ने दो अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर योगदान भी दियाः पीएल480 खाद्य निर्यातों के भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव और कृषि क्षेत्र से संसाधनों का संरक्षित शहरी उद्योगों में बढ़ता अंतरण। वर्ष 1960 में, उन्हें भारतीय अर्थव्यवस्था पर पीएल480 निर्यातों का अध्ययन करने के लिए आमंत्रित किया गया। इस मुद्दे पर सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि पीएल480 से संबंधित बजटीय प्रचालनों का मुद्रा आपूर्ति पर निवल विस्तारक प्रभाव है तथा इसके परिणामस्वरूप ये भारतीय अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति संबंधी दबावों को बढ़ाने के लिए उत्तरदायी हैं। दूसरी ओर, उन्होंने यह तर्क भी दिया कि एक समग्र मुद्रास्फीतिक स्थिति में, खाद्य आयातों के अर्थव्यवस्था को उस स्थिति तक ले जाने की संभावनाएं हैं, जहां खाद्य मूल्यों को कृत्रिम रूप से दबाकर तथा खाद्य उत्पादन से अन्य वस्तुओं के संसाधन अंतरण को उत्प्रेरित करके खाद्य आयातों पर पर्याप्त और लंबे समय तक निर्भरता पैदा होती हो। पीएल480 के मौद्रिक प्रभावों के उनके विश्लेषण ने एक लंबी बहस और विवाद को जन्म दे दिया, जिसमें बड़ी संख्या में गैर-सरकारी अर्थशास्त्रियों के अलावा, वित्त मंत्रालय, संयुक्त राष्ट्र दूतावास और साथ ही आरबीआइ के अर्थशास्त्रियों ने भाग लिया। अनेक वर्षों तक प्रोफेसर शिनॉय ने अनेक पेपर्स में इस विषय को आगे बढ़ाया तथा उनके इस विषय पर निरंतर लेखों के

परिणामस्वरूप ही सरकार ने वर्ष 1966 में पीएल480 के मौद्रिक प्रभाव की जांच करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर दी।(2)

हमने पहले वर्ष 1956 के बाद से सरकार द्वारा अपनाई गई योजना संबंधी रणनीति के बारे में उनके विरोध पर चर्चा की थी। उनकी राय में, इस रणनीति में कृषि क्षेत्र में संसाधनों की सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों और अन्य क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर पलायन शामिल था, जिनकी संगठित पूंजी बाजारों तथा सरकार एवं अर्ध-सरकारी वित्त संस्थाओं में आसान पहुंच थी। प्रासंगिक आंकड़ों की सावधानीपूर्वक छानबीन करने के पश्चात उन्होंने खाद्य उत्पादन की कमजोर होती स्थिति तथा उस अवधि में प्रचलित खाद्य की प्रति व्यक्ति उपलब्धता के स्थिर स्तर का विस्तार से वर्णन किया। उन्होंने आगे विभिन्न ब्याज दरों और उनके सामान्य तौर पर संसाधन आवंटन और विशेष रूप से कृषीय विकास पर प्रतिकूल प्रभावों की जटिल एवं भेदभाव वाली प्रणाली के उद्भव और विकास का भी प्रदर्शन किया। एक समग्र मुद्रास्फीतीय स्थिति में, इसके चयनात्मक ऋण नियंत्रणों की नीति के सामान्य संलग्नकों के साथ संगठित पूंजी बाजारों में दमनकारी ब्याज दरों की नीति के प्रभावों के व्यापक विश्लेषणों ने इस क्षेत्र में व्यापक शोध परियोजनओं को जन्म दिया।

अन्य अर्थशास्त्रियों के विपरीत, प्रोफेसर शिनॉय का कृषि पर जोर एक लघु एवं विशिष्ट कारणों पर आधारित था। उन दिनों के अनेक अर्थशास्त्री कृषि को अत्यधिक प्राथमिकता प्रदान करने की वकालत करते थे, जिसका अर्थ था कि सरकार के परिव्यय का कुछ बड़ा भाग कृषि पर खर्च किया जाएगा। लेकिन प्रोफेसर शिनॉय के विचार उनसे भिन्न थे। उनकी तर्कसम्मतता के अनुसार, सरकार द्वारा विनियुक्त विनिवेशित संसाधनों की कुल संख्या में पर्याप्त कटौती की जानी चाहिए, जिसे उत्पादक क्षेत्रों के बहाव पर छोड़ दिया जाना चाहिए, तथा बाजार की ताकतों के अनुरूप कृषि भी इन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है। अतः संसाधन आवंटन के उपयुक्त पैटर्न का

उनका विचार तुलनात्मक लागतों और सीमांत उत्पादकता के युग्म सिद्धांतों पर आधारित था तथा वह सामान्य तौर पर की जाने वाली साधारण प्राथमिक चर्चा से कोसों दूर था।

बौद्धिक विरोध और बाजार के सिद्धांतों एवं बाजार आधारित समाधानों के प्रति उनकी निराशा के व्याप्त परिवेश में उनके लेखों ने उन्हीं के साथियों से पर्याप्त मात्रा में विरोथ तथा कड़ी आलोचना हासिल की और आने वाले समय में यह अनुभव किया कि उन्होंने एक लंबे समय से उनसे बातचीत ही नहीं की है। जैसा *हिंदू* अखबार में एक टीकाकार की टिप्पणी के अनुसार, "वे अपने व्यवसाय में ही एक बाहरी व्यक्ति" बन कर रह गए। आत्मसंयम तथा धैर्य के साथ, उन्होंने अपने व्यवसाय के अपवर्तन को स्वीकार कर लिया तथा अपने लॉर्ड कीन्स जैसे महान् पूर्ववर्तियों की परंपरा का निर्वहन करते हुए, उन्होंने *स्वराज, हिंदू, टाइम्स ऑफ इंडिया, स्टेट्समैन, इकोनॉमिस्ट, फॉर्चून, वॉल स्ट्रीट जर्नल, फॉर ईस्टर्न इकोनॉमिक रिव्यू* आदि जैसे भारतीय और विदेशी समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में व्यापक तौर से लिखते हुए जनता के विचारों को प्रभावित करने तथा उन्हें प्रबद्ध बनाने का प्रयास किया। एक सार्वजनिक व्यक्तित्व के रूप में, वे अपनी अत्यधिक प्रत्यक्ष एवं गुंजायमान साहस के लिए तथा उस समय के "अलोकप्रिय विचारों" को प्रतिपादित करने तथा उनका उद्घाटन करने की उनकी अनारक्षित एवं अनथक इच्छा के लिए भारतीय अर्थशास्त्रियों के बीच अत्यंत अनूठे बने रहे।

सामान्य तौर पर किसी अर्थशास्त्री की योग्यता को उसके अन्वेषण के विशिष्ट मामले पर उसके द्वारा घोषित निष्कर्षों के आधार पर नहीं मापा जाता है। हालांकि यह बात महत्वपूर्ण होती है, परंतु उसका आकलन उसके तर्क की गुणवत्ता, उसके आकलन में उसके द्वारा दर्शाई गई तकनीकी सक्षमता, जिस मॉडल को वह प्रचालानात्मक विश्लेषण के लिए स्वीकार करता है, उसकी अनुभूतिपूरक वैधता तथा सबसे अधिक, उस मात्रा से, जिससे उसका योगदान प्रतिबिंबित होता है तथा विश्लेषक हितों को पूर्व दिनांकित कर देता है और उसके क्षेत्र में आने वाली विद्वानों की

पीढ़ियों के योगदान को ध्यान में रखा जाता है। इन मापदंडों के आधार पर, प्रोफेसर शिनॉय को भारतीय अर्थव्यवस्था के विचारों के भावी इतिहासकारों द्वारा सर्वाधिक उत्कृष्ट एवं महत्वपूर्ण अर्थशास्त्री के रूप में मान्यता प्रदान की जाएगी।

विकास अर्थव्यवस्था से संबंधित साहित्य जो हाल ही में व्यावसायिक जर्नलों में प्रकाशित हो रहा है, का सरणी के तौर पर अवलोकन करने से हर कोई व्यक्ति एक खुले मन से इस बात से आश्वस्त हो जाएगा कि जिन समस्याओं को प्रोफेसर शिनॉय ने अत्यंत महत्वपूर्ण माना था, वे विकासशील अर्थशास्त्रियों की नई पीढ़ी में बड़ी मात्रा में शोध हितों के रूप में उभरकर सामने आई हैं। इसके अलावा, उनके अन्य अनेक निष्कर्ष जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था पर पीएल480 का प्रभाव, विनिमय नियंत्रणों के वितरणात्मक एवं आवंटनीय प्रभाव, कृषि से संसाधन अंतरण आदि को अधिक अथवा कम सहयोजित किया गया है।(3) तथापि, यह देखना वास्तव में दुखद है कि उनके जीवनकाल के दौरान, उनके व्यावसायिक सहयोगियों ने एक व्यापक पैमाने पर उनके योगदान को नजरअंदाज कर दिया था अथवा उन्हें पृष्ठभूमि में सीमित कर दिया था। साठवें और सत्तरवें दशक के दौरान भारतीय अर्थशास्त्र नीति से संबंध रखनेवाले व प्रकाशित हुए लगभग समस्त लेख और शोध उनके योगदान तथा विचारों पर निरंतर वैश्विक स्तर पर चुप्पी साधे प्रतीत होते हैं।(4)

वे लगभग 15 वर्ष की अवधि तक, 1954 से 1968 तक गुजरात विश्वविद्यालय के साथ जुड़े रहे। अपने निदेशक के कार्यकाल के दौरान उन्होंने अर्थशास्त्र विभाग में आर्थिक उदारवादिता की एक मजबूत परंपरा स्थापित की तथा युवा छात्रों की पीढ़ियों को उदारवादी आर्थिक विचारों तथा उपदेशों से अवगत कराया। अनेक वर्षों तक, उन्होंने मौद्रिक एवं अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र में पाठ्यक्रमों में शिक्षा दी। उनके व्याख्यान समान रूप से स्पष्ट, अत्यंत सुनियोजित तथा अत्यंत उत्प्रेरक हुआ करते थे। बाजार विरोधी विचारधारा तथा वामपंथी अतिवाद की लगभग स्वयंसिद्धी

की स्वीकार्यता के उन दिनों में, छात्र संभवतः उनके जीवन में पहली बार ऐसे किसी व्यक्ति के संपर्क में आते थे, जो हस्तक्षेपवादी विचारधार और कार्यक्रम के प्रत्येक "शासकीय विशेषज्ञ" के आधार को गहनता के साथ चुनौती देता, तथा मौद्रिक स्थायित्व बनाए रखने की आवश्यकता अग्रगामी बाजारों के सामाजिक रूप से उपयोगी कार्यकरण और लचीली विनिमय दर प्रणाली के मूल्यों पर त्रुटिहीन तर्क प्रस्तुत करता था, और इस प्रकार उन्हें सिद्धांत एवं प्रयोग के अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर उनके दृष्टिकोणों पर पुनर्विचार करने के लिए तथा मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के तर्क एवं बाजारों के सिद्धांतों का अध्ययन करने एवं उनको समझने पर विवश करता था। वे विख्यात अर्थशास्त्रियों के तर्कों की आलोचना किए बिना उपसंहार कर देने की भारतीय विद्यार्थियों की अत्यंत आम आदत को पसंद नहीं करते थे, तथा वे इसके स्थान पर इस महत्व पर बल देते थे कि वे इन दलीलों के भीतर छिपे महत्वपूर्ण तर्कों को पहचानने और उनकी समालोचना के साथ मूल्यांकन करें।

उनके साप्ताहिक सेमिनार, जहां वे अपने चल रहे शोध की समस्याओं पर चर्चा किया करते थे, छात्रों में अत्यंत लोकप्रिय थे तथा उनमें अन्य संकाय के सदस्य तथा विभाग से बाहर के लोग भी बड़ी संख्या में शामिल होते थे। उन सेमिनारों में व्याप्त अत्यंत गहन बौद्धिक चर्चा तथा वाद-विवाद के माहौल का वर्णन करना कठिन है। उनके सभी छात्र मानते थे कि वे अपना अधिकांश अर्थशास्त्र इन्हीं सम्मेलनों में सीखते हैं।

विश्विद्यालय में अपने शिक्षण के दिनों में प्रोफेसर शिनॉय ने व्यावसायिक मान्यता का चरम हासिल किया। वर्ष 1957 में वे भारतीय आर्थिक संघ के अध्यक्ष चुने गए। वर्ष 1962 में उन्हें प्रतिष्ठित वालचंद हीराचंद स्मारक व्याख्यान देने के लिए सम्मानित किया गया, तथा वर्ष 1966 में, उन्होंने त्रिवेंद्रम में केरल विश्वविद्यालय में सर रामास्वामी मुदलियार व्याख्यान दिया। उनके लेखों ने उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान भी दिलाई। उन्हें मोंट पेलेरिन सोसायटी का सदस्य

बनने के लिए आमंत्रित किया गया। इसके पश्चात, उन्हें प्रतिष्ठित रेलिम फाउंडेशन ग्रांट प्राप्त हुई और वे रेलिम फाउंडेशन के विजिटिंग स्कॉलर के रूप में यूएसए गए और उन्होंने अनेक अमेरिकी विश्विविद्यालयों में भारतीय आयोजना पर अनेक व्याख्यान दिए, तथा वर्ष 1966 में वे एक विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में भी गए।

वर्ष 1968 में, उनके जीवन ने एक अप्रत्याशित मोड़ लिया। उन्होंने विद्यालय के श्रम कल्याण विभाग में रीडर की नियुक्ति में हुए मतभेदों के कारण गुजरात विश्वविद्यालय में अपने पद से इस्तीफा दे दिया। उनका मानना था कि उस नियुक्ति में विश्वविद्यालय प्रशासन ने संकाय की राय को पर्याप्त महत्व नहीं दिया। वे शैक्षणिक स्वतंत्रता के सिद्धांतों के प्रति पूरी तरह वचनबद्ध थे, तथा उन्होंने प्रशासन के निर्णय के साथ सामंजस्य स्थापित कर पाना असंभव पाया। अनेक अग्रणी बुद्धिजीवियों तथा शिक्षाविदों ने, अपनी राजनैतिक विचारधारा को त्याग कर, विश्वविद्यालय की एक स्वर में भत्सर्ना की तथा उनके पक्ष का समर्थन किया, जो अनेक प्रकार से उनके बौद्धिक एकीकरण के प्रति जताया गया विश्वास था, तथा उस प्रतिष्ठा का द्योतक था, जो देश की प्रबुद्ध जनता उनके लिए अपने मन में रखती थी। वे अर्थशास्त्र विभाग और विद्यालय को छोड़ते हुए बहुत दुखी थे, जिसे उन्होंने अपने घोर परिश्रम तथा योजना की मदद से अपने आदर्शों के अनुरूप विकसित करने का प्रयास किया था। उन्होंने अपने जीवन का एक बड़ा भाग अहमदाबाद में बिताया था, जो उनके पैतृक स्थान की ही भांति उन्हें प्यारा हो गया था। उन्होंने युवा शोध विद्वानों (रिसर्च स्कॉलर्स) को आकर्षित करने तथा उन्हें सहायता प्रदान करने के लिए तथा विश्वविद्यालय में एक जीवंत शोध परंपरा का निर्माण करने के लिए इंग्लैंड में इस्टीट्यूट ऑफ इकोनॉमिक्स अफेयर्स की ही तर्ज पर विभाग में एक शोध केंद्र स्थापित करने की योजना बनाई थी। इसमें कोई संदेह नहीं था कि उनका त्यागपत्र विश्वविद्यालय तथा अर्थशास्त्र विभाग के लिए एक अपूर्णीय क्षति थी। प्रोफेसर शिनॉय नई दिल्ली चले आए और यहां उन्होंने एक स्वतंत्र

अर्थशास्त्र शोध केंद्र की स्थापना की। समर्पण और उत्साह की अत्यंत उत्साही भावना के साथ जो उनकी वृद्धावस्था के लिए आश्चर्यजनक बात थी, उन्होंने केंद्र के लिए कार्य करना जारी रखा और बड़ी संख्या में शोत्र पत्र निकाले तथा विभिन्न समाचारपत्रों और जर्नलों में नियमित रूप से लिखते रहे। वे हृदय रोगों की गिरफ्त में आ चुके थे। लेकिन उन्होंने आराम करने से इंकार कर दिया और 8 फरवरी, 1978 को दुखद निधन तक वे अनथक रूप से कार्य करते रहे।

प्रोफेसर शिनॉय एक अत्यंत धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे तथा उन्होंने अपना अधिकांश खाली समय विभिन्न धर्मों के धर्मग्रंथों को पढ़ने में बिताया। वे मैडम ब्लावोत्सकी के ब्रह्मविद्यावादी लेखों से विशेष रूप से प्रभावित थे। उन्होंने धार्मिक अनुभवों को किसी व्यक्ति के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना तथा यह माना कि व्यक्ति की धार्मिक मान्यताओं एवं व्यवहार के बीच संपूर्ण एकता विद्यमान है। उन्होंने सभी दृष्टिकोणों एवं धर्मों को एक समान सम्मान दिया। जो भी लोग उन्हें जानते हैं, वे इस बात को प्रमाणित करेंगे कि वे वास्तव में विघटनकारी धार्मिक पूर्वाग्रहों से ऊपर थे।

गहन विनम्रता तथा अटूट समपर्ण के साथ, उन्होंने अपने धर्म, अपने कर्तव्य को पूर्ण करने का संपूर्ण प्रयास किया। वाकई वे एक पुण्यात्मा थे....।

टिप्पणियां और संदर्भः

1. हालांकि उन्होंने इन मुद्दों पर अत्यंत विशाल साहित्य प्रकाशित किया था, निम्नलिखित पेपर्स इस विषय पर एक प्रतिनिधि नूमने का कार्य करेंगेः-

   क) "ओवर वैल्युएशन ऑफ द इंडियन रुपी", (दि बैंकर, 1969).

   ख) "करेंसी ओवरवैल्युएशन इन सम अंडरडेवेलप्ड कंट्रीज़" (II पॉलिटिको यूनिवर्सिटी ऑफ पविया, इटली, 1968).

ग) "फ्रीडम ऐंड ऑर्डर इन यूडीसी ऐंड दि प्रॉब्लम ऑफ फॉरेन एड" (वही, 1965).

घ) "एरर्स ऐंड ओमिशंस इन बैलेंस ऑफ दि पेमेंट्स स्टेट्समैन ऐंड नं. II मनी" (दि एकाउंट,1971).

ङ) "एरर्स ऐंड ओमिशंस इन बैलेंस ऑफ पेमेंट्स" (1L पॉलिटिको, 1972.

2. इस विषय पर उनके सभी लेख उनकी बाद में प्रकाशित पुस्तक, *पीएल480 ऐंड इंडियाज़ फूड प्रॉब्लम(1974)* में पाए जा सकते हैं।

इस संबंध में सहयोजित उदाहरणों के नमूने के लिए देखिए मेलर, *न्यू स्ट्रेटेजी ऑफ ग्रोथ*।

3. जे. भगवती एवं ए.क्रुगर, *अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू*, 1978। जे.भगवती एवं पी. देसाई इंडस्ट्रियालाइज़ेशन।

4. इस प्रवृत्ति का उल्लेखनीय उदाहरण भारतीय आर्थिक नीति पर जे.भगवती तथा एस.चक्रवर्ती का सर्वे पेपर है। अमेरिकी आर्थिक एसोसिएशन द्वारा कमिशन्ड तथा उस महती निकाय द्वारा अभिप्रमाणन का सामान्य चिन्ह हासिल यह पेपर्स एक ओर तो आयात लाइसेंसों की पीएल480 बोली पर कम महत्व वाले पत्रों का उल्लेख करने के प्रति सतर्क है, वहीं दूसरी ओर प्रोफेसर शिनॉय के योगदानों का उल्लेख करने में स्वयं दूर रखता है, जो हर कोई जानता है कि इन मुद्दों पर सर्वप्रथम योगदान देने वाले व्यक्ति थे, तथा जो इन्हीं मुद्दों पर व्यापक रूप से सहभागिता वाले विवादों तथा बहसों को आरंभ करने के कार्य में काफी सहायक थे। दूसरी प्रकार की प्रवृत्ति प्रोफेसर भावातोष दत्ता के मामले में भी देखी जा सकती है, जिन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के विचारों के इतिहास पर उत्कृष्ट कार्य किया है। प्रोफेसर बी.डी. वाउर ने अपनी "डिसेंट ऑन डेवलपमेंट" पुस्तक

में भी गुन्नार मेरडाल के अत्यंत विख्यात कार्य "एशियन ड्रामा" में इस दुर्भाग्यपूर्ण भूल का उल्लेख किया है।

बी.आर. शिनॉय के चुनिंदा प्रकाशनः

1. सीलॉन करेंसी ऐंड बैंकिंग, लॉन्गमैन ग्रीन्स ऐंड कं मद्रास, 1941।
2. बॉम्बे प्लान- ए रिव्यू, कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1944।
3. पोस्ट वार डिप्रेशन ऐंड दि वे आउट, किताबिस्तान, इलाहाबाद, 1945।
4. स्टर्लिंग एसेट्स ऑफ दि आरबीआइ, इंडियन काउंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, नई दिल्ली, 1946।
5. फॉरेन एक्सचेंज सिचुएशन, फोरम ऑफ फ्री इंटरप्राइज़, बॉम्बे, 1957।
6. प्रून दि प्लान, फोरम ऑफ फ्री इंटरप्राइज़, 1957।
7. प्रॉब्लम्स ऑफ इंडियन इकोनॉमिक डेवलपमेंट, मद्रास विश्वविद्यालय, 1958।
8. स्टेबिलिटी ऑफ दि इंडियन रुपी- ए रिव्यू ऑफ दि फॉरेन एक्सचेंज सिचुएशन, हेरॉल्ड लास्की इंस्टीट्यूट ऑफ पॉलिटिकल साइंस, इलाहाबाद, 1959।
9. नेशनल सेविंग्स ऐंड द इंडस्ट्रियल फाइनेंसः इंडियन एक्सपीरियंस, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बंगलोर, 1961।
10. इंडियन प्लानिंग ऐंड इकोनॉमिक डेवलपमेंट, एशिया पब्लिशिंग हाउस बॉम्बे,1963।
11. इंडियन इकोनॉमिक पॉलिसी, पॉपुलर प्रकाशन बॉम्बे, 1968।
12. पीएल480 ऐंड इंडियन फूड प्रॉब्लम, एफिलिएटेड ईस्ट वेस्ट प्रेस, नई दिल्ली, 1974।